भ्राता ब्रह्माकुमार जगदीश चन्द्र जी के बारे में

ब्रह्माकुमारी चक्रधारी बहन जी जो कि दिल्ली, शक्ति नगर और रूस के सेवाकेन्द्रों की निमित्त संचालिका हैं, भ्राता जगदीश चन्द्र जी के साथ कमला नगर और शक्ति नगर सेवाकेन्द्रों में लगभग चालीस सालों तक रह ईश्वरीय सेवा करने का सुवअसर प्राप्त की हुई सौभाग्यशाली आत्मा हैं। वे भ्राता जी के बारे में अपने संस्मरण इस प्रकार सुनाती हैंह्न

किसी व्यक्ति को याद करना माना उसका रूप-रंग याद करना नहीं है अपितु उस व्यक्ति के गुण और योग्यताओं को स्मृति में लाकर उनको अपने में लाने की प्रेरणा लेना है। जगदीश भाई, प्यारे बाबा की प्रेरणाओं से भरपूर विशेष और महान् आत्मा रहे। बाबा की उन प्रेरणाओं को ख़ुद जीवन में उतारकर, दूसरों को भी उनसे प्रेरित कर सबको आगे बढ़ाने का प्रयत्न सदा करते रहे। उनके साथ के सारे अनुभव तो मैं नहीं सुना पाऊँगी परन्तु कुछ ही अनुभवों को आपके सामने रखूँगी।

जबसे मेरा समर्पित जीवन शुरू हुआ तब से मैं भाई साहब के पास रही यानि लगभग चालीस वर्ष भाई साहब के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पहले गुलज़ार दादी जी, भाई साहब, मैं और एक भंडारे की बहन होती थी। उसके पश्चात् जब देहली, पाण्डव भवन बना, तो गुलज़ार दादी जी वहाँ चली गयीं, मुझे कमला नगर में छोड़ दिया। लेकिन जगदीश भाई होने के कारण मैं सदा निश्चिन्त रही क्योंकि पग-पग पर वे हमारा मार्गदर्शन करते थे। हालाँकि सब कार्य स्वयं करते थे लेकिन नाम हमेशा बहनों का करते थे। कहते थे, ये सब-कुछ बहनें ही करती हैं। हर बात हमें सिखाते स्वयं, फिर पीछे हो जाते थे और हमें आगे कर देते थे।

जब मैं सेवाकेन्द्र में आयी, वहाँ उस समय एक चारपाई थी, दो कुर्सियाँ थीं और एक मेज़ थी। गुलज़ार दादी जी उस चारपाई पर सोती थीं। इतना ही फर्नीचर था सेन्टर पर। हमें सोने के लिए चटाई थी, हम उसी को इस्तेमाल करते थे। बाद में किसी ने एक छोटा-सा खटोला दिया, जिसमें छोटे बच्चे को सुलाया जाता है। उसको गुलज़ार दादी जी की खटिया के नीचे डालते थे, रात को वहाँ से निकाल कर उस पर मैं सोती थी। भाई साहब के पास भी एक टेडी-बाँकी-सी खटिया थी। फिर भी उस समय बड़े आनन्द का जीवन था। मुझे एक बार संकल्प आया कि यहाँ कोई ठीक कुर्सी नहीं, मेज नहीं, सोफा नहीं। एक ही अलमारी थी, उसमें चार ताक़ (खाने) थे। एक में भाई साहब के कपड़े होते थे, दूसरे में मेरे होते थे, तीसरे में भंडारे वाली के होते थे और चौथे में जनरल कपड़े होते थे। बस ये चार खाने थे, इसी एक अलमारी को तीस साल तक हमने इस्तेमाल किया। उस घर के मालिक ने एक गॉदरेज की अलमारी दी थी, वह दादी जी के पास रहती थी, उसमें वे अपने कपड़े और यज्ञ का सामान रखती थीं। सेन्टर में बहुत कम ही सामान था, कोई परदा भी नहीं होता था।

यहाँ तो वो ही सिन्ध की दो कुर्सियाँ और एक मेज थी, और कुछ था नहीं, तो मुझे लगा कि यहाँ एक सोफा होना चाहिए। वो भी यज्ञ के पैसे से नहीं। एक भाई आया था, उसने कहा था कि दीदी, यज्ञ के लिए कोई चीज़ चाहिए तो बता दीजिये। उससे मैंने एक सोफा लिया। कमरे में सोफा बिछाकर मैं मधुबन या कहीं दिल्ली से बाहर चली गयी। जब वापिस आयी, तो सब जगह ढूँढ़ा लेकिन वहाँ कहीं सोफा था ही नहीं। मैंने पूछा, भाई साहब, एक सोफा रखा था, वो कहाँ है? उन्होंने पूछा, क्या करना है आपको? मैंने कहा, अगर करना नहीं था तो उसको मैं लायी किस लिए थी? मैंने फिर पूछा, सोफा कहाँ है? भाई साहब ने कहा, यह आश्रम है, आश्रम में सोफे नहीं रखे जाते। मैंने कहा, भाई साहब, आश्रम में दो कुर्सियाँ हैं, अगर दो से ज़्यादा लोग आ जायें तो कहाँ बैठेंगे? मैं तो सेवा के लिए ले आयी थी, स्वयं बैठने के लिए नहीं। मैंने फिर पूछा, वह है कहाँ? उन्होंने कुछ कहा नहीं, वहाँ से चले गये। लेकिन किसी ने मुझे कान में बताया कि उसको बेच दिया गया है और उस पैसे को भण्डारी में डाल दिया गया है। उनका जीवन एकदम सादा था लेकिन सेवा उनकी एकदम उच्च कोटि की होती थी।

उस समय हमें यह मालूम ही नहीं था कि यज्ञ के जीवन में प्रेस किये हुए कपड़े होते हैं। लौकिक में तो हम घर में प्रेस किये हुए कपड़े पहनते थे लेकिन यज्ञ में कोई उस समय प्रेस किये हुए कपड़े नहीं पहनते थे। कपड़े धुलते थे, उनको अच्छी तरह से पानी लगाया जाता था और गुलज़ार दादी जी की खटिया पर सारे कपड़े रख देते थे। उन कपड़ों पर एक दरी बिछाते थे। गुलज़ार दादी जी रात को उस पर सोती थीं तो सुबह तक नीचे रखे हुए सारे कपड़े प्रेस हो जाते थे। दादी जी सोती थी तो यह सेवा भी हो जाती थी। वहाँ कोई अलग से प्रेस करने की सिस्टम नहीं थी। भाई साहब जहाँ भी बाहर जाते थे, सूई-धागा साथ में रखते थे, अगर रास्ते में भाई साहब का पायजामा या कुर्ता फट जाता था तो रिक्शा में बैठे-बैठे सिलाई करके आगे चल पड़ते थे। भाई साहब को सदा यह रहता था कि यज्ञ की कोई भी छोटी-सी चीज़ भी व्यर्थ नहीं जानी चाहिए, उसकी हानि नहीं होनी चाहिए। शुरू से उन्होंने जो भी काम किया बहुत एक्यूरेट किया और जल्दी से जल्दी किया। भाई साहब की दिनचर्या सुबह दो-ढाई बजे से शुरू होती थी। प्रिंटिंग प्रेस में सुबह आठ बजे के अन्दर मैटर देना होता था। थोड़ी-सी देर हो जाती थी तो दूसरों का मैटर छपना शुरू हो जाता था। कैसी भी परिस्थिति आयी, तबीयत कैसी भी रही लेकिन उन्होंने अपनी दिनचर्या नहीं बदली। न सिर्फ स्वयं समय का पालन करते थे लेकिन हमें भी सिखाते थे। दिल्ली में कहीं दस बजे मीटिंग है, हमें वहाँ पहुँचने के लिए बीस मिनट चाहिएँ तो वो पौने दस बजे ही आकर खड़े हो जाते थे और हमें कहते थे कि आप अभी तक क्यों नहीं जा रहे हो? जल्दी निकलो, देर हो रही है। वहाँ पहुँचने के लिए बीस मिनट चाहिएँ, पहले ही पाँच मिनट देर हो चुकी है, आप जल्दी निकलो। मैं कहती थी, भाई साहब, दस बजे कहते हैं, शुरू साढ़े दस बजे ही होगी। कहते थे, वो चाहे साढ़े दस बजे शुरू करें लेकिन आप अपने संस्कार को ख़राब मत करो। एक्यूरेट समय पर रहना चाहिए, आप क्यों इसको चेन्ज करते हो? धीरे-धीरे एक-दूसरे को देख सब टाइम पर पहुँचना शुरू करेंगे तो हर कार्य टाइम पर हो जायेगा। जब तक हम नीचे नहीं उतरते, तब तक वे वहाँ से नहीं हिलते थे। अगर हम नाश्ता नहीं भी किये होते थे तो वे स्वयं हमारे नाश्ते को डिब्बी में डालकर कार में रख आते थे और कहते थे, आपका नाश्ता गाड़ी में रखा है, रास्ते में गाड़ी में ही नाश्ता करना, पहले यहाँ से जाओ, गाड़ी निकालो, देर हो गयी है। शुरू से मैंने उनमें समय की पाबन्दी देखी।

एक बार बड़ी दीदी ने मुझे पत्र लिखा था कि जगदीश दिन-रात सेवा करता रहता है, वह सैर नहीं करता इसलिए आप उसको रोज़ सैर करने ले जाना। मैंने उनसे कहा, भाई साहब, यह दीदी का पत्र है और मुझे उन्होंने यह ड्यूटी दी है, उनकी आज्ञा का पालन करना मेरा कर्त्तव्य है, आप चलिये सैर पर। एक-दो दिन तो चले सैर पर। पाँच मिनट के अन्दर ही कह देते थे, मैं समझता हूँ, काफी हो गयी सैर। चलो सेन्टर पर चलते हैं। सेवा के बारे में उनका यह होता था कि जो बाबा की आज्ञा है, वह कार्य जल्दी होना चाहिए। बाप की प्रत्यक्षता में लेट नहीं होनी चाहिए। समय बीतता जा रहा है, संगमयुग निकलता जा रहा है। ऐसे समय पर मैं सेवा करूँ या सैर करूँ? मुझे याद आता है कि भाई साहब अस्पताल में थे, गुलज़ार दादी जी भी वहाँ थीं, उस समय एक दिन वे कहने लगे कि मैं बाबा को प्रत्यक्ष नहीं कर सका। कहते-कहते उनकी आँखों में आँसू आ गये। मुझे बहुत फ़ील हुआ क्योंकि ज़िन्दगी में पहली बार मैंने उनकी आँखों में आँसू देखे।

कभी-कभी उनको हम फलों का रस निकाल कर देते थे कि आज तो थोड़ा-सा पी लो। लेकिन हमने कभी यह नहीं देखा कि वे पी लें। पहले यह पूछते थे कि बहनों ने पीया? मैं कहती थी, भाई साहब, आप बताइये, इस समय हम आठ बहनें हैं, आठ बहनों को जूस पिलायें और उसके बाद आपको पिलायें, यह नहीं चलता। इतना जूस कहाँ बैठकर निकालेंगे? एक ही दिन इतना समय कहाँ दे पायेंगे? आज आप पीइये, कल किसी एक बहन को, परसों किसी एक बहन को पिला देंगे। लेकिन अकेले पीते हुए उनको मैंने कभी नहीं देखा, आठ कटोरी में उस जूस को डालकर बाक़ी बचे हुए को वे पीते थे। कभी उनके लिए ज़्यादा भी निकाल कर देते थे तो कहते थे, इतना ज़्यादा क्यों निकाला? यज्ञ का क्यों वेस्ट करते हो? यज्ञ का एक कण, हीरे के बराबर है। कोई भी चीज़ हो, उसको वे अपने लिए कम से कम इस्तेमाल करते थे। कहते थे, मेरे ऊपर कम से कम लगना चाहिए और सेवा में ज़्यादा से ज़्यादा हो।

यज्ञ में जब मैं आयी तो बहुत छोटी थी। उस समय मुझे ज्ञान सुनाना आदि नहीं आता था। भाई साहब पहले मेरे से भाषण लिखवाते थे। उसके बाद साथ ले जाते थे तो रास्ते में मुझे सारी प्वाइंटस याद दिलाते थे कि बोलो, इसके बाद क्या प्वाइंट बोलोगे, इसके बाद कौन-सा प्वाइंट बोलोगे। भूल जाती थी तो याद कराते थे। पूरे रास्ते में रटाकर, स्टेज पर बिठाकर, भाषण शुरू कराकर, फिर वहाँ से जाते थे। यह सिर्फ मेरे लिए नहीं, जितनी भी बहनें थीं, क्लास में आने वाली जितनी भी मातायें थीं

उनके प्रति भी करते थे। सप्ताह में दो बार माताओं के लिए क्लास रखते थे और भाषण कैसे करें, यह ट्रेनिंग देते थे, लिखवाते थे। भाषण माताओं से लिखवाने के बाद, उसको सुनते थे उनके द्वारा ही। उनसे पूछते थे कि आप रटा हुआ सुनाती हैं या दिल से सुनाती हैं? बाबा ने उस क्लास का नाम दिया था 'मुरलीधर क्लास'। इस क्लास में भाषण करने वाली, कोर्स कराने वाली मातायें आती थीं। ऐसा नहीं कि भाई साहब ने सिर्फ ज्ञान दिया, सेवा मेंभी हड्डी मेहनत की। हरेक कार्य ख़ुद करके हमें सिखाया। अगर समझो, सुबह तीन बजे संगठन का योग रखा है तो पौने तीन बजे हॉल में जाकर वे बेल पर बेल बजाते थे ताकि हम जल्दी उठकर आ जायें। इस प्रकार, वे हमें क़दम-क़दम पर समय का महत्त्व रखना सिखाते थे।

कमला नगर तो किराये का मकान था और उस समय सेन्टर की स्थिति भी साधारण थी। जब हम शक्ति नगर आ गये तो बाबा का ख़ुद का मकान बन गया। उस मकान में 24-25 कमरे थे, हमने सोचा, कुछ फर्नीचर हो जाये। हमने कहा, भाई साहब, इनमें कुछ सामान रखेंगे या वैसे ही सब कमरे ख़ाली रखेंगे? उन्होंने कहा, सोचेंगे। उन्हीं दिनों कोई भाई शिफ्ट (स्थानान्तरित) होकर जा रहे थे, उनको सामान लेकर नहीं जाना था। उनके पास एक डायनिंग टेबल, छह कुर्सियाँ और चार पलंग थे। साढ़े सात सौ में देना चाहते थे। किसी माता ने वो साढ़े सात सौ रुपये दिये, हम उस सामान को ले आये और सेन्टर को सजाया। हमेशा वे यही कहते थे कि सादगी में सेवा ज़्यादा होती है, सजधज में सेवा नहीं होती। यही पैसा किसी सेवा में लगाओ।

सन् 1952 में भाई साहब ज्ञान में आये और सन् 1953 में कमला नगर सेन्टर के मकान को उन्होंने ही किराये पर लिया था। प्रथम सेवाकेन्द्र खोलने के लिए निमित्त बनी थी यह आत्मा। बाबा ने भाई साहब को यह कहा था कि ऐसा मकान किराये पर लेना जिसकी एक दीवार भी विकारियों के घर से न लगी रहे। बाबा ने यह भी कहा था कि दिल्ली यूनिवर्सिटी के सामने ही यह स्प्रिचुअल यूनिवर्सिटी होनी चाहिए। कमला नगर, दिल्ली यूनिवर्सिटी से 4-5 मिनट के रास्ते की दूरी पर है। वहाँ यह एक ऐसा मकान था इसके चारों तरफ़ दरवाज़े थे और एक ही बीच का मकान था। उस मकान का मालिक भाई साहब का बहुत रिगार्ड रखता था, उसने इनके नाम से ही मकान किराये पर दिया था। वह मकान 160 रुपये किराये पर लिया था। जब मकान मालिक ने हमें मकान किराये पर दिया था तब उनके बच्चे छोटे-छोटे थे, जब उन बच्चों के भी बच्चे हो गये, वो भी बड़े हो गये तो सहज है कि उनका परिवार काफी बड़ा हो गया। उन्होंने कहा कि हमें मकान चाहिए, आप ख़ाली कीजिये। तब भाई साहब ने कहा, ठीक है, आज से ही हम मकान ढूँढ़ना शुरू करते हैं, जैसे ही मकान मिलेगा फौरन आपका मकान ख़ाली कर देंगे। जब मकान ख़ाली करने का समय आ गया तो कई लोगों ने कहा कि आप इतने सालों से रहे हुए हो, ऐसे ही नहीं छोड़ना, उसके लिए उनसे पैसे लेना। भाई साहब ने कहा, एक आदमी ने हमें किराये पर मकान दिया है, उसका मतलब यह नहीं है कि हम उस मकान के मालिक हैं। उस मकान को ख़ाली करने से पहले एक-एक छेद को भी सीमेन्ट से भरवाया, पूरे मकान की सफ़ेदी करायी। जैसा मकान उनसे लिया था, वैसा उनको लौटाया। उसके बाद, मकान वालों को एक साल के लिए कहीं जाना था, उन्होंने कहा, आप लोग इतने सालों तक रहे हैं, अभी हम सारे घूमने जा रहे हैं, घर ख़ाली छोड़ना ठीक नहीं, क्या करें? भाई साहब ने कहा, आपको जितना समय जाना है, जाओ, इस घर का ध्यान मैं रखूँगा। हम बहनें शक्ति नगर वाले मकान में रहे और जगदीश भाई लगभग एक साल तक कमला नगर वाले मकान में रहे। भाई साहब का खाना-पीना हम शक्तिनगर सेन्टर से भेजते थे।

वे समय को बहुत महत्त्व देते थे। कहते थे, गया समय कभी हाथ नहीं आता, वो भी संगम का समय एक बार खो दिया तो कल्प-कल्प खोना पड़ेगा। हमने देखा, वे एक क्षण को भी व्यर्थ जाने नहीं देते थे। कभी हम तो सोच लेते थे, अभी थोड़ा समय है, यह कार्य बाद में कर लेंगे लेकिन वे कहते थे, उस थोड़े समय में भी कुछ तो कर सकते हैं। उस थोड़े समय को भी व्यर्थ क्यों किया जाये? हमेशा भाई साहब का कहना होता था कि कभी अच्छा अवसर आता है तो उसको हाथ से जाने नहीं देना चाहिए। यह अवसर किसी व्यक्ति द्वारा लाया हुआ नहीं है, यह श्रेष्ठ कार्य का अवसर है, प्यारे बाबा के द्वारा ही मिला है। इस प्रकार हर क्षण का, हर मौके का सदा लाभ लेते हुए आगे बढ़ते उनको हमने देखा।

उनमें ज्ञान इतना था कि बात मत पूछिये। कोई एक बात निकली तो उसकी दस बातें सुना देंगे। जैसे नल खोलने से पानी की धारा गिरती ही रहेगी निरन्तर, वैसे वे बोलना शुरू करेंगे तो ज्ञान की धारा गिरने लगती थी। एक बार वे अपना अनुभव सुना रहे थे कि "ऐसी कभी कोई बात होती तो मैं मम्मा को कहता था, मम्मा, अगर यह ऐसा होता तो इसके दस फायदे हो सकते

हैं। मम्मा हँसते हुए बोलती थीं कि आपको हर फ़ायदा पहले से ही मालूम होता है! अच्छा बताओ, कौन-से दस फ़ायदे होंगे। मैं अंगुली पर दस फायदे गिना देता था। फिर कहता था कि अगर ऐसा नहीं हुआ तो इसके पन्द्रह नुकसान होंगे। मम्मा कहती थीं, अभी तो बात हुई है, पहले से आपके पास पन्द्रह नुकसान आ गये? पूरे पन्द्रह नुकसान उसी समय गिनकर दिखा देता था।'' उनकी बुद्धि में ज्ञान इतना स्पष्ट था और भरपूर था कि किसी बात के लिए ज़्यादा सोचने की ज़रूरत नहीं पड़ती थी।

मैंने देखा, उनके सामने कोई गणितज्ञ आया, जीवशास्त्रज्ञ आया, कोई मनोविज्ञानी आया या कोई अन्य विषय का तज्ञ आया, उसको उस रूप से, उस ज्ञान से प्रभावित करना यह उनके लिए अति सरल रहता था। कोई पूछ लेते थे कि आपने रिसर्च किस विषय में किया है? वे कहते थे, मैं तो कम पढ़ा हुआ आदमी हूँ। मैंने किसी विषय पर रिसर्च नहीं किया है। ऐसे लगता था कि हर विषय का अति गहराई से उन्होंने अध्ययन किया हुआ है। जब भी वे दिल्ली में होते थे, रात्रि क्लास कराते थे। वे ज्ञान की गुह्य बातें बहुत स्पष्ट और सरल रूप से समझाते थे। इसलिए हम कभी उनकी रात्रि क्लास मिस नहीं करते थे। कितनी भी सेवा हो, कोई भी बहन उनकी रात्रि क्लास मिस नहीं करती थी।

कई बार वे सच को ऐसे कह देते थे कि सुनने वालों को बहुत कटु लगता था। मैं उनसे कई बार कह चुकी थी कि आप बोलकर क्यों बुरे बनते हैं, जब सब कह रहे हैं कि यह अच्छा है और ताली बजा रहे हैं, आप भी बजाइये। कहते थे, यह मेरे से नहीं होगा। आज नहीं तो कल, वे मेरी यह बात समझेंगे। वे सत्य बताये बिना रहते नहीं थे। उनके सामने कई ऐसे प्रसंग लेकर भाई-बहनें आते थे तो कहते थे कि मेरी बात आपको अच्छी नहीं लगती होगी, मैं आपका विरोध नहीं कर रहा हूँ, जो बात अच्छी नहीं है, उसे बताना मैं अपना फ़र्ज़ समझता हूँ। आपके प्रति मेरा कोई भी बुरा भाव नहीं है, आपके प्रति मेरा हृदय का स्नेह है। मैंने जहाँ तक नोट किया कि उन्होंने चाहे किसी को कुछ कह दिया लेकिन उनके प्रति अन्दर नफ़रत या घृणा हो, ऐसा कभी नहीं। अगर कोई उनके सामने किसी के प्रति नफ़रत की बात कहता तो उनको फौरन बोल देते थे कि नहीं, कभी किसी के प्रति नफ़रत की भावना नहीं लाना। ठीक है, हर किसी में कमी-कमज़ोरी होती है लेकिन उनके प्रति हमें अपने मन में कमी-कमज़ोरी की भावना नहीं रखनी है।

कई लोग समझते हैं, जगदीश भाई बहुत गंभीर रहते थे। ऐसा नहीं, वे सिर्फ़ गंभीर नहीं थे, रमणीक भी बहुत थे। कभी उनको हँसते हुए देखकर कई लोग आकर हमसे पूछते थे कि क्या जगदीश भाई हँसते भी हैं? वे रमणीक होते हुए भी, जो जैसा व्यक्ति है उसके साथ ऐसे ही शब्दों का प्रयोग करते थे और हमें भी ऐसा करने के लिए कहते थे। रमणीकता में अलौकिकता कभी नहीं भूलते थे और भूलने वालों को चेतावनी भी देते थे कि क्या ऐसे शब्द आपको प्रयोग करना उचित था?

वे व्यवहार कुशलता में भी नंबर वन थे। अगर किसी कार्यक्रम में वे जा रहे हैं, गाड़ी ख़ाली है, अपने ही कोई भाई-बहनें खड़े हैं, उनको भी उसी जगह पर जाना है, तो कहेंगे गाड़ी ख़ाली है, इनको भी क्यों नहीं बिठायें? बिठाकर जाते थे। ऐसा नहीं, गाड़ी उनके लिए है तो अकेले ही जायें। ऐसा उन्होंने कभी नहीं किया। वे कहते थे, हम तो बाबा के सर्वस्व त्यागी बच्चे हैं, यह धन उनका है जो कमाकर यज्ञ में देते हैं। उन्होंने यह धन ईश्वरीय सेवा में दिया है। सेवा में उस धन का सदुपयोग ज़रूर होना चाहिए। उस पर कभी हमारा अभिमान नहीं होना चाहिए कि यह चीज़ मेरी है। यह हमारी नहीं है, इस पर उन सबका अधिकार है।

भाई साहब कहते थे कि अगर किसी के ख़ुशी के मौके पर न जा सकें तो कोई हर्जा नहीं लेकिन बीमारी के समय उनके पास ज़रूर जाओ। जाते समय कोई फल-फूल आदि ले जाओ। ऐसे समय पर उनको उमंग-उत्साह भरने की आवश्यकता होती है। अगर क्लास में आने वाला विद्यार्थी बीमार पड़ा होता तो हमें कहते थे चलो, मैं भी आपके साथ चलता हूँ। ऐसे उनमें व्यवहार कुशलता, पारिवारिक भावना बहुत थी और हमें भी सिखाते थे। भाई साहब कहते थे कि नष्टोमोहा बनना माना हर किसी से रिश्ते-नाते तोड़ना नहीं है। नष्टोमोहा का अर्थ कई लोग उल्टा ले लेते हैं। हमारी आन्तरिक स्थिति नष्टोमोहा हो और हममें व्यवहार कुशलता भी हो।

भाई साहब कमला नगर में रहे, शक्ति नगर में रहे और डेरेवाला में भी रहे लेकिन हमेशा सबसे ऊपर की मंजिल में ही रहे। वे कहते थे कि जब मैं लिखने का या पढ़ने का काम करता हूँ तो उस समय किसी डिस्टर्बन्स से लिंक न टूटे। कितनी भी गरमी हो लेकिन वे ऊपर ही रहते थे, आपको पता है, दिल्ली में साल में आठ मास गरमी रहती है।

जब कोई बहन मधुबन या दूसरे स्थान पर जा रही होती तो वे स्वतः नीचे आकर और सब भाई-बहनों को बुलाकर जाने

वालों को विदाई देते थे। विदाई देने से पहले हमें कहते थे, टोली लेकर आओ, जाने वाली बहन या भाई को भी खिलाओ और वो भी सबको खिलाकर जाये। अरे, सेकण्ड का भरोसा नहीं, आज हम आपस में मिलते हैं, पता नहीं, कौन कब बिछड़ जायेगा। सब बाबा के चुने हुए बच्चे हैं, अगर उनको हम स्नेह और सम्मान नहीं देंगे तो दूसरों को कैसे कहेंगे कि ये विश्व की विशेष आत्मायें हैं, परमात्मा की चुनी हुई आत्मायें हैं। इस प्रकार, जाने वालों को नीचे तक, सेन्टर के बाहर तक छोड़ने आते थे। हम कहते थे, भाई साहब आप बड़े हैं, आप यहीं से ही विदाई दे दें, हम बाकी लोग उनको छोड़ने बाहर तक जायेंगे। लेकिन उन्होंने कभी ऐसा नहीं किया। जब वे बिल्कुल बीमार पड़ गये, नीचे उतरना उनके लिए मना था, तब वे अपने कमरे से ही जाने वालों को विदाई दिया करते थे। जब वह भाई या बहन बाहर से या मधुबन से होकर वापिस आते थे तो उनके स्वागत के लिए फूल मँगाकर रखते थे। कहते थे, हमारा दैवी परिवार है, कोई आता है तो उनका सत्कार करो, उनके साथ दिव्यता का व्यवहार करो। वे ख़ुद ऐसा व्यवहार करते थे और हमें भी सिखाते थे। कहते थे, यह ईश्वरीय परिवार कल्प में एक ही बार मिलता है, ईश्वरीय परिवार में आपस में बहुत स्नेह और रिगार्ड होना चाहिए।

मान लीजिये, कभी-कभी दो बहनों का आपस में विचार-भेद हो गया और किसी तीसरे व्यक्ति से उनको पता चल गया कि दो बहनों में कुछ बात हो गयी। भाई साहब कभी उनको ऐसे ही नहीं छोड़ते थे कि कुछ समय के बाद आप ही ठीक हो जायेंगी। वे तुरन्त उन दोनों को बुलाते थे। हमें भी बोलते थे कि आप थोड़े समय तक भी उनको ऐसे छोड़ देते हो ना, उस थोड़े से समय में सेन्टर के वातावरण में फ़रक आ जायेगा। सेवाकेन्द्र का वातारण हमेशा दिव्यता का होना चाहिए। अगर किसी का मूड ऑफ़ है और आपने 15-20 मिनट ऑफ़ रहने दिया तो वो प्रकम्पन वहाँ फैलेंगेह्ल! इसलिए भाई साहब, पता चलते ही उनको बुलाते और सेकण्ड में उनका मूड ठीक कर देते। पहले एक को बुलाकर पूछते थे, सुना है, आज कोई बात हुई है, क्या बात है? वह अपनी बात सुनायेगी। सुनने के बाद भाई साहब उस बहन की विशेषता और योग्यताओं की महिमा करेंगे। कहेंगे, आपको अपनी विशेषताओं के बारे में पता नहीं है, बाबा जानता है, एक दिन आपकी प्रत्यक्षता होगी। ये मैं बाबा के बोल बोल रहा हूँ। ऐसे बोलकर उस आत्मा में इतना उमंग और उल्लास भर देते थे कि उसका मूड आफ़ ही ख़त्म हो जाता था। इसी प्रकार, दूसरी को भी बुलाकर उसके गुणों से उसको बहला कर उसका मूड ठीक करते थे। फिर पहले वाली को भी बुलाकर, दोनों को इकट्ठा बिठाकर, कहते थे, देखें ज़रा, एक-दूसरे को प्यार से दृष्टि दो। एकदम दृष्टि देना तो मुश्किल होता है क्योंकि दोनों में मनमुटाव हुआ था। कहते थे, नहीं जब तक आपस में मीठी दृष्टि नहीं देंगे, मैं नहीं मानूँगा कि आप ठीक हैं। फिर उन दोनों के हाथ में टोली देकर, एक-दूसरे को खिलाने के लिए कहते थे। खिलाकर हाथ मिलाने के लिए कहते थे। रोज़ हमें यह याद दिलाते थे कि आज इस सेन्टर पर हो, कल और किसी सेन्टर पर। रोज़ नये-नये सेन्टर खुलते हैं, पता नहीं कब किसको किस समय यहाँ से बिछड़ जाना है। दूसरी जगह जाकर अपने-अपने सेन्टरों की सेवा में व्यस्त हो जायेंगे तो आपस में मिल भी नहीं पायेंगे। यही तो समय है मिलने का। इस प्रकार, पारिवारिक भावना जाग्रत कर, उनके मनमुटाव को मिटा देते थे। किसी बहन की तबीयत ख़राब हो गयी तो उनके बारे में इतना ध्यान रखते थे कि इनकी तबीयत क्यों ख़राब हुई, इन्होंने क्या खाया था, उनको क्या दवाई लेनी हैह्लह्ल सब प्रकार से सोचते थे।

क्लास में आने वाले भाई-बहनों के प्रति भी उनका बहुत ध्यान रहता था। अगर कोई भाई या बहन दो दिन क्लास में नहीं आये तो उनका संकल्प चलता था कि वे क्यों नहीं आये, क्या तकलीफ़ हुई उनको। हमें कहते थे कि देखो, आने वालों का, जिनको हमें मंज़िल पर ले जाना है, ख्याल रखें क्योंकि मंजिल आने से पहले वे रास्ते से बिछड़ न जायें। हमें कहते थे, आपस में, 10-10 या 15-15 विद्यार्थियों को बाँट लो, उनका ध्यान रखो। बहनें भी ऐसे करती थीं और बड़ी बहन को समय प्रति समय उन भाई-बहनों का समाचार देती थीं। भाई साहब हमें कहते थे कि आप बहनें दुनिया से परे हैं, उस कलियुगी दुनिया में रहने वालों को कई परिस्थितियों से गुज़रना पड़ता है। जिस तरह बाबा हम समर्पित बच्चों को यज्ञ में रखकर पूरी तरह से पालना करते हैं, उसी तरह आपको भी क्लास में आने वाले बाबा के बच्चों का पूरी तरह ख्याल रखना चाहिए, ज्ञानमार्ग में आगे बढ़ते रहने का उमंग-उत्साह बढ़ाते रहना और अलौकिक पालना देते रहना है। भले आपके पास प्रसाद ज़्यादा नहीं है, एक ही तोशा है, उसी को 3-4 टुकड़ा बनाकर तीन-चार भाई-बहनों को दे दो। बाबा का वही एक टुकड़ा प्रसाद उनमें शक्ति भरेगा। इस प्रकार भाई साहब हम बहनों को कई प्रकार की शिक्षायें देते थे।

यह बात उनके लिए सही लागू होती है कि सदा अच्छा सोचो और बुरे से बुरे के लिए स्वयं को तैयार रखो। आयु के

लगभग बासठ वर्ष पूरे होने के बाद उनके मुख से ये शब्द निकलते रहे कि मैं केवल 72 वर्ष ही जीऊँगा क्योंकि मेरी आयु बहत्तर वर्ष है, इससे ज़्यादा मैं जी नहीं सकता। हम उनसे पूछते थे कि क्या आपको किसी ज्योतिषी ने कहा है? वे कहते थे, भृगु ऋषि की सन्तान किसी ज्योतिषी से पूछने नहीं जाती। मैं स्वतः ही जानता हूँ कि मेरी आयु कितनी होगी। साथ में यह भी कहते थे कि जब मेरा अन्त होगा, वह पेट की किसी बीमारी से होगा। जाने के पाँच साल पहले से उन्होंने नये कपड़े सिलवाने छोड़ दिये थे। मैं कहती थी, भाई साहब, आपके नाम से कितनी सौग़ातें आती हैं, आपके नाम से कितने कपड़े आते हैं, आप तो सिलवाते नहीं, पुराने ही पुराने कपड़े चलाते हैं। कहते थे, जब पुराने कपड़े काम कर रहे हैं तो नये कपड़े क्यों सिलायें? मधुबन में मीटिंग थी, मीटिंग में आने से पूर्व, हालाँकि उनकी तबीयत ठीक नहीं थी तो उन्होंने कहा, अपनी जितनी भी अलमारियाँ हैं, उनमें जो सामान रखा है, उस सारे को मैं देखना चाहता हूँ। दो दिन में सारा सामान निकाला और जितने भी कपड़े थे, वे सभी हमारे सामने लाकर रख दिये और कहा, इनमें से थोड़े-से कपड़े, जो आप उचित समझो कि मेरे काम में आयेंगे, उनको छोड़कर शेष सामान आप जिसको चाहो दे दो। वे पुराने कपड़े क्लास के भाइयों को, जिसको-जिसको आते थे उनको बाँट दिये। लास्ट में उन्होंने अपने पास थोड़े-से ही कपड़े रखे थे, जिनको वे मधुबन आते समय ले आये थे। बाक़ी सब सामान बाँट दिया था। मैं बहुत कहती थी, आप ऐसा क्यों करते हैं? कहते थे, इतना सामान क्यों रखूँ? उनके पास जो चीज़ पड़ी थी, उनकी एक लिस्ट बनवायी थी। वे कहीं भी जाते थे, जो भी सौग़ात मिलती थी, आते ही हमें दे देते थे कि यह सौग़ात मिली है। कई बार कोई लौकिक वाले भी कोई लिफाफे दे जाते थे, उसको हाथ भी नहीं लगाते थे, हमें बुलाकर कहते थे, उसको उठाओ, यह यज्ञ के लिए है।

ऐसा नहीं कि उनको अपने शरीर का ज्ञान और ध्यान नहीं था। वे जानते थे कि इस शरीर को क्या खिलाना चाहिए और क्या नहीं खिलाना चाहिए। लेकिन वे यही सदा सोचते थे कि जब सस्ती चीज़ से काम चल सकता है तो महंगी चीज़ क्यों खायें? जहाँ तक मैं जानती हूँ, शरीर को जितना विश्राम देना चाहिए था, वो उन्होंने नहीं दिया। कभी-कभी मैं देखती थी कि वे बहुत विचारमग्न रहते थे तो मैं कहती थी, भाई साहब, आप बहुत गहराई से विचार कर रहे हैं, क्यों इतना सोच रहे हैं, छोड़ दीजिये नाह्न! तब कहते थे, मुझे विचार चलाना भी आता है और विचार को समेटना भी आता है। सचमुच मैंने यह विशेषता उनमें अन्त तक देखी। सोनीपत के नक्शे को जल्दी तैयार करने के लिए उन्होंने कहा था। एक नक्शा बनकर आया लेकिन पूरा नहीं था। पूरा नक्शा बनकर आने में दो दिन देर हो गयी। क्योंकि आर्किटेक्ट का एक्सीडेंट हो गया तो वह समय पर आ नहीं सका। इसलिए भाई साहब उस नक्शे को पूरा देख नहीं पाये। वे बार-बार कहते थे कि सोनीपत का काम जल्दी होना चाहिए, किसी काम में देर नहीं करो। उनको पता था कि शायद वे ज़्यादा दिन रहने वाले नहीं हैं। जिस दिन उन्होंने यह कहा कि मैं ज़्यादा दिन नहीं ठहरूँगा, मैं चला जाऊँगा, अब मैं बचूँगा नहीं, उसके बाद सोनीपत के विषय में उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा। ऐसा लगता था कि उन्होंने संकल्प को एकदम समेट लिया था। तब केवल एक ही बाबा की याद। अन्त में जब तक उनको होश रही, तब तक वे यही बोलते रहे, मीठा बाबा, प्यारा बाबा, सिकीलधा बाबा। दिल्ली में शुरू से ही हम लोगों को याद दिलाते थे कि रात को क्या बोलकर सोना है, उन्हीं शब्दों को वे लास्ट तक बोलते रहे कि मेरा बाबा, मीठा बाबा, सिकीलधा बाबा, लाड़ला बाबा, दयालु बाबा, कृपालु बाबा। शरीर छोड़ने से कुछ दिन पहले उन्होंने यह कहा कि कभी बाबा में संशय नहीं लाना, वह दयालु और कृपालु है, वह दया का भण्डार है।

अन्त तक वे त्याग की मूर्ति बनकर ही रहे। हमेशा वे यही कहते थे कि यज्ञ में पैसा आता है, देखो, बाबा के बच्चे, कैसे-कैसे मेहनत करके, बचत करके, अपने भी ख़र्च में कटौती करके बाबा को भेजते हैं, उसका सदुपयोग होना चाहिए, सेवा के लिए ही ख़र्च होना चाहिए, न कि किसी एक व्यक्ति के लिए। इस प्रकार, वे शुरू से लेकर अपने जीवन के अन्त तक त्यागी रहे, तपस्वी रहे और साधारण रहे।